चन्दामामा

माँ-बच्चों का मासिक पत्र

काशी के राजा, ब्रह्मदत्त के जमाने में बोधिसत्व वीणा बजाने वाले के रूप में पैदा हुए। उनका नाम था गुतिल। दूर दूर तक यह ख्याति फैली हुयी थी कि जम्बूद्वीप में, वीणा बजाने में उनसे मुकाबला करनेवाला कोई न था। इस कारण, काशी के राजा ने उनको अपने दरबार में नियुक्त कर दिया था।

इस नियुक्ति के कई साल बाद, व्यापार के लिये काशी के कुछ व्यापारी उज्जयिनी गये। गुतिल के कारण काशी में, बच्चा बच्चा भी वीणा सुनने में अभिरुचि रखता था। जब से काशी छोड़ी थी, उन्होंने वीणा वादन न सुना था। उन्होंने उज्जयिनी के व्यापारियों से कहा कि वे उज्जयिनी के सबसे बड़े वीणा बजानेवाले को अपने मुकाम पर बुलाकर सङ्गीत का प्रबन्ध करें।"

उज्जयिनी के मशहूर वीणा बजानेवाले का नाम मूसिल था। काशी के व्यापारियों के विनोद के लिये उसी को बुलाया गया। मूसिल, वीणा लेकर, व्यापारियों के ठहरने की जगह पहुँचा। उसने बहुत देर वीणा बजाई, पर व्यापारियों को न सन्तोष हुआ, न आनन्द ही। मूसिल ने मध्यम श्रुति में गीत बजाये, पर तब भी व्यापारियों ने वाह वाह न की।

आखिर मूसिल ने कहा-"मैं इतनी देर से आप के सामने वीणा बजा रहा हूँ। क्या आपको मेरा बजाना पसन्द नहीं आया है?"

काशी के व्यापारी, एक दूसरे का मुँह देखने लगे। वे हैरान थे। उनमें से एक ने कहा-"तो आप अब तक बीणा बजा रहे थे? पर हम समझ रहे थे कि आप तार

ठीक कर रहे हैं।" दूसरे ने चुटकी ली-"शायद वीणा बिगड़ गई है, कहा सुनती नहीं है, आपको सताती-सी लगती है।"

मूसिल ने मुँह मसोसकर कहा-"तो इसका मतलब है कि आपने मुझसे भी अधिक प्रवीण वीणा बजानेवाले को सुन रखा है। इसीलिये आपको मेरा बजाना पसन्द नहीं आया है। यह तो बताइये कि वह बजानेवाला कौन है?"

"क्या आपने काशी राज्य के गुतिल का नाम नहीं सुना है?" व्यापारियों ने पूछा।

"क्या वे बहुत अच्छा बजाते हैं?" मूसिल ने पूछा।

"उनके बजाने से मुकाबला किया जाय तो आपका बजाना ही नहीं लगता।" व्यापारियों ने कहा।

"खैर, जब तक मैं उनके जितना अच्छा नहीं बजाता, तब तक आराम न लूँगा। आपको मुझे कोई पैसे देने की ज़रूरत नहीं।" यह कह मूसिल चला गया। वह उसी दिन, काशी नगर जाकर, बोधिसत्व के घर पहुँचा। बोधिसत्व ने उसको वहाँ देखकर पूछा-"तुम कौन हो?"

"मैं उज्जयिनी का रहनेवाला हूँ। मुझे लोग मूसिल कहते हैं। आपके पास वीणा सीखने आया हूँ। आपकी कृपा से मैं भी आप के समान वीणा बजानेवाला होना चाहता हूँ। यही मेरा उद्देश्य है।" मूसिल ने कहा। बोधिसत्व ने उसको वीणा सिखाना स्वीकार किया।

मूसिल रोज घर में बीणा का अभ्यास करता और बोधिसत्व के साथ दरबार में भी जाता। शीघ्र ही सबको विदित हो गया कि वह बोधिसत्व का शिष्य था। कई वर्ष बीत गये। एक दिन बोधिसत्व

ने अपने शिष्य से कहा-"तुम्हारी शिक्षा समाप्त हो चुकी है। जितना में जानता था, उतना मैंने तुम्हें बता दिया है। अब तुम अपने देश वापिस जा सकते हो।"

परन्तु मूसिल उज्जयिनी वापिस न जाना चाहता था। जब वह कुछ न जानता था, तभी वहाँ के लोगों ने उसको प्रवीण समझ लिया था। "कुछ भी हो, काशी राज्य में दरबारी वीणा बजानेवाले, बनने में ही कीर्ति है। अब वह बोधिसत्व के समान जानता है। बोधिसत्व वृद्ध भी हो गये हैं। इसलिये काशी राजा के दरबार में ही आश्रय पाना चाहिये।" उसने सोचा।

मूसिल ने बोधिसत्व से कहा-"मैं उज्जयिनी नहीं जाना चाहता। आप कह ही रहे हैं कि मैं आप के बराबर जान गया हूँ, इसलिये मुझे भी दरबार में, अपने समान कोई नौकरी दिलवा दीजिये।"

बोधिसत्व ने यह बात राजा से कही। "क्योंकि वह आप का शिष्य है, इसलिये दरबार में उसको नौकरी दे दूँगा, पर उसको आप का आधा वेतन ही मिलेगा। अगर वह मान

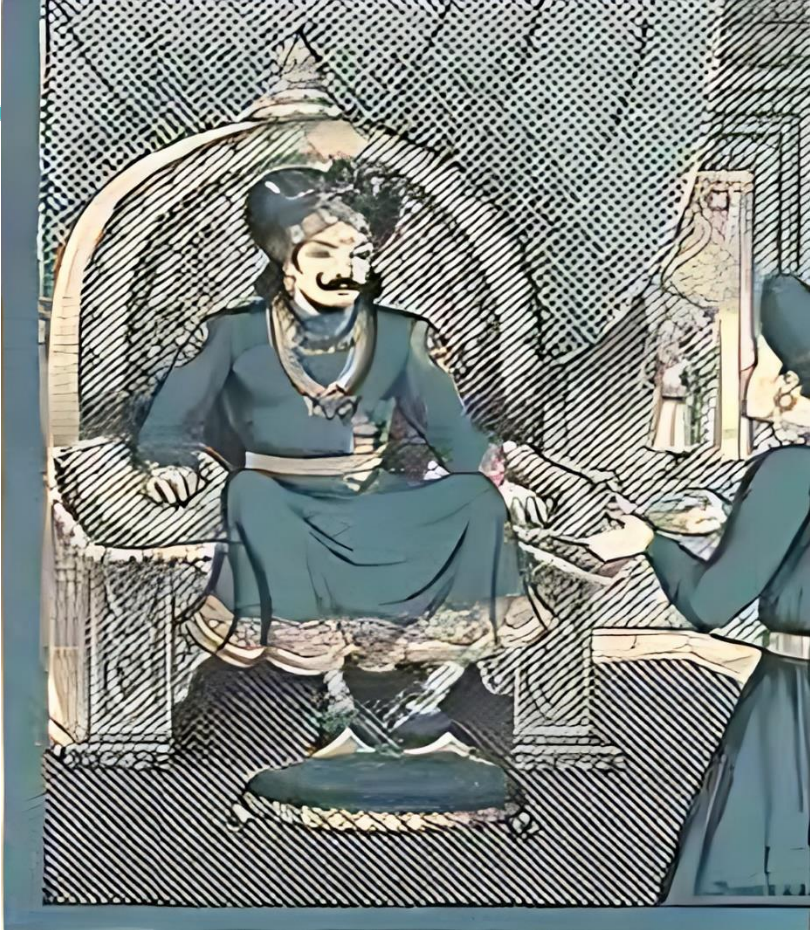

जाय तो वह नौकरी ले सकता है।" राजा ने कहा।

बोधिसत्व ने जब यह बात मूसिल से कही, तो उसका सन्तुष्ट होना तो अलग, वह अन्दर ही अन्दर जलने लगा-"वह किस बात में कम है और बोधिसत्व में उससे अधिक क्या है? फिर मुझे आधा वेतन क्यों दिया जाना चाहिये?"

मूसिल ने राजा के पास जाकर पूछा-"महाप्रभू! मुझे आप आधे वेतन पर नियुक्त कर रहे हैं। जितना मेरे गुरु जानते हैं, उतना में भी जानता हूँ। आप चाहे तो गुरुजी से पूछ सकते हैं। जितना बेतन उनको दिया जा रहा है, कृपया

उतना मुझे भी दिलवाइये।" राजा को गुस्सा आ गया। उन्होंने कहा-"मैं तो केवल यह ही जानता हूँ कि तुम गुतिल के शिष्य हो। मैं नहीं जानता था कि तुम उनके समान भी हो। जब तक में स्वयं तुम्हारी प्रवीणता न देख लूँगा, तब तक मैं विश्वास न करूँगा।"

"चाहें तो आप मेरी परीक्षा करके देख लीजिये।" मूसिल ने कहा।

"अच्छा! मैं तुम दोनों का मुकाबला करवा दूँगा। अगर तुमने भी उतना अच्छा बजाया, जितना कि तुम्हारे गुरु बजाते हैं, तुम्हें भी उतना ही वेतन दूँगा। नहीं तो, तुम्हें दरबार में आने भी न दिया जायेगा।" राजा ने कहा। मूसिल मान गया। गुरु और शिष्य, दोनों में साम्मुख्य हुआ। दोनों ने, एक दूसरे से बढ़कर बजाने का प्रयत्न किया। बीच में बोधिसत्व का बीणा का एक तार टूट गया। परन्तु वे बाकी तारों पर ही बजाते गये। यह देख मूसिल ने जान-बूझकर अपनी वीणा का एक तार तोड़ दिया। फिर बोधिसत्व की वीणा का एक और तार टूट गया। मूसिल ने भी एक और तार तोड़ दिया। कुछ देर बाद बोधिसत्व की वीणा के सब तार टूट गये। मूसिल ने भी अपनी वीणा के सब तार तोड़ दिये। परन्तु बोधिसत्व टूटे हुये तारों पर ही बजाते जाते थे पर मूसिल वैसा न कर सका। वह अपना सा मुँह लिये इधर उधर देखने लगा।

दरबारियों ने बोधिसत्व की प्रवीणता की बड़ी प्रशंसा की, और मूसिल का परिहास किया। मूसिल, उसी दिन काशी छोड़कर उज्जयिनी की ओर चल पड़ा।

[८]

[शत्रुओं का मुकाबला नरवाहन और समरसेन ने करना शुरू कर दिया था न? नगर से बाहर, मैदान में घमासान युद्ध हुआ। यद्यपि समरसेन ही जीता था, तो भी वह बुरी तरह घायल हो गया था। नरवाहन ने अपने को राजा घोषित कर दिया था। शिवदत्त ने गुप्त मार्ग से अपने अनुचरों के साथ राजमहल से भागने की ठानी। बाद में--]

"उस गुप्त मार्ग से क्या आप पहले कभी न गये थे?" मन्दरदेव ने उत्सुकता से पूछा।

शिवदत्त ने सिर हिलाते हुये कहा- "उस से पहले हमें उस मार्ग से जाने की कभी नौबत न आई थी। परन्तु जब हम उस अन्धकारमय मार्ग की ओर गये, तो हम जान गये कि बिना रोशनी के आगे जाना असम्भव सा था। यद्यपि जल्दी में मैं रोशनी की बात भूल गया था, तो भी मेरे अनुचर इस बारे में पूरे तैयार थे। वे तुरन्त कुछ मशाल जलाकर सुरङ्ग में जा घुसे। रोशनी हो गई। मैं भी चला। इतने में एक ने पीछे से कहा- "सेनानी! शत्रु फाटक तोड़कर अन्दर घुस गये हैं। सुनिये, वे शोर भी कर रहे हैं। वे हमें ही खोजते नज़र आते हैं। अब क्या किया जाय?"

"अच्छा! तो दरवाजा बन्द कर दो। नरवाहन जब तक नहीं आ जाता, तब तक

अगर शत्रु गुप्त-मार्ग मालूम कर पीछा करने लगे, तो उस दरवाजे को खोल कर वहाँ तक का रास्ता जलमय किया जा सकता था। यह अच्छा उपाय था। उस उपाय को बरतने की जरूरत है कि नहीं, यह सोचता सोचता मैं गुप्त मार्ग के दरवाज़े की ओर देखने लगा। वहाँ शत्रु मशालें लेकर, कुछ खोजते से लगते थे। इसका मतलब यह हुआ कि उन्हें हमारा ठिकाना-पता लग गया था। आगे पीछे सोचने का समय न था। मैने पूरे जोर से लोहे की जञ्जीर खींची। तुरन्त वह दरवाजा, सुरङ्ग के बीचों-बीच आ गिरा और उसके आगे पानी भयङ्कर रूप से गरजने लगा, मानों कोई झरना गिर रहा हो। दरवाज़े के होने के कारण, पानी हमारे रास्ते में नहीं आ रहा था। उसने पानी का प्रवाह रोक रखा था।

अब हमें जल्द से जल्द सुरङ्ग से बाहर निकल जाना चाहिये था। अगर देरी हो गई तो नरवाहन हमें, जङ्गल में, चारों ओर से घेर लेगा। अगर वह ऐसा कर सकेगा तो हमारी हालत पिञ्जड़े में फँसे चूहों की तरह

यह गुप्त मार्ग वे न जान सकेंगे। और इस बीच में हम सुरक्षित बाहर भी निकल जायेंगे। घबराओ मत, धीरज धरो।" मैने कहा।

उस सुरङ्ग में, हम थोड़ी दूर हो गये थे, कि हमें लोहे की जञ्जीरें लटकती हुयी दिखाई दीं। मैंने सिर उठाकर देखा-"सुरङ्ग के ऊपरले भाग में एक दरवाजा-सा लगा। मैंने जञ्जीर जो खींची कि यकायक पानी गिरने लगा । तब मुझे तुरन्त मालम हो गया कि वहाँ वह दरवाज़ा क्यों लगा रखा था। मैंने सन्तोष की साँस ली और आगे की बात सोचने लगा।

हो जायेगी; मुझे यह अशङ्का होने लगी । थोड़ी देर में हम सुरङ्ग के परले सिरे तक पहुँचे। वहाँ ऊपर की ओर सीढ़ियाँ जाती थी और सीढ़ियों के अन्त में एक दरवाजा था। हम सीढ़ियों पर चढ़कर दरवाजे तक गये, और कान लगाकर ध्यान से सुनने लगे कि कहीं कोई वहाँ बाहर तो नहीं है।

वह प्रदेश निश्शब्द जान पड़ता था। हमें गुप्त द्वार खोलकर बाहर जाने में ही अक्लमन्दी दिखाई दी। मैंने जङ्ग खाये हुये, दरवाजे के सीखचों को हिलाया ही था कि परली तरफ घोड़ों का हिनहिनाना सुनाई दिया। मनुष्यों की बातें भी हो रही थीं। मैं सहसा चौका।

"सब कुछ ठीक है। गुप्त-मार्ग का द्वार अभी बन्द है।" एक ने धीमे से कहा।

"अच्छा! तो वे सब बागी पानी में डूब- डाब गये होंगे। मर गये होगे।" दूसरे व्यक्ति ने सन्तोष भरी आवाज़ में कहा।

इतने में एक कड़ी आवाज़ उधर से सुनाई दी। वह निश्चय ही किसी

अधिकारी की आवाज़ मालूम होती थी।

"इतनी दूर खड़े होकर बातें करने से काम नहीं चलेगा। हम नहीं जानते कि वे बागी पानी में डूब गये हैं, या हमसे बचकर पहले ही जङ्गल में भाग गये हैं। अलावा इसके अगर शिवदत्त के सिर को वह चाहे मरा हो या जिन्दा, हम ले जा सकें, तो नरवाहन ने हमें जागीरें देने का वचन दिया है।" यों वह अधिकारी चिल्ला रहा था।

"हम सब कुछ करने के लिए तैयार हैं, अब आपका क्या हुक्म है?" उन दोनों व्यक्तियों ने एक साथ पूछा।

"जाकर उस पेड़ की थाल में जो खुफिया दरवाजा है, उसे खोलकर देखो। अगर सुरङ्ग पूरी तरह पानी से भर गई हैं, तो ढूँढ़ने पर भी हमें शिवदत्त का शव न मिलेगा। वह मर चुका होगा। अगर पानी न हो तो....."

उसकी बात पूरी होने के पहले ही, द्वार के पास से कई शेरों का भयङ्कर गर्जन सुनाई दिया। नरवाहन के सैनिकों का, घोड़ों को लेकर, पीछे हटने का शब्द भी सुनाई दिया।" उस पेड़ के पास शेर हैं। ख़तरा है। पीछे हटो।" एक चिल्लाया। पर तुरन्त उनके अधिकारी की कर्कश ध्वनि सुनाई दी-"शेर तो क्या, अगर वहाँ हाथी और भालू भी हो, तो बिना काम पूरा किये पीछे नहीं हट सकते। खबरदार! नहीं तो मेरी तलवार के शिकार हो जाओगे। डरपोक कहीं के। बढ़ो आगे।"

उसके बाद ऐसा लगा, जैसे शेर उन पर कूद पड़े हो। भयङ्कर गर्जन, सैनिकों का चीत्कार सुनाई दिया। हमें बाहार जाने का इससे अच्छा मौका मिलना मुश्किल था। नरवाहन के सैनिक शेरों को मार कर, जरूर हमें मारने के लिए गुप्त मार्ग के द्वार

पर थोड़ी देर में आते। भाग्य हमारा साथ देता लगता था।

मैंने अपने अनुचरों को यह बात समझायी। मेरी बात सब ने मान ली। जब नरवाहन के सैनिक शेरों से भिड़ रहे थे, तो हम सब का या तो उनसे मुकाबला करना नहीं तो जङ्गल में भाग जाना अच्छा था। इसी में अक्लमन्दी थी।

मैं सरदार था। मुझ पर बहुत जिम्मेवारियाँ थीं। जिम्मेवारियों के कारण मैं कुछ घबरा-सा रहा था। मेरी आज्ञाओं पर ही, मेरे और मेरे अनुचरों का भविष्य निर्भर था। मेरे साथ या तो वे मृत्यु पायेंगे, नहीं तो कहीं सुरक्षित पहुँचेंगे, यह थोड़ी देर में ही पता लगनेवाला था। मैंने अपने को ढाढ़स बँधाया।

मैने तुरन्त गुप्त मार्ग का दरवाजा खोल दिया। जङ्ग खाये हुये वे किवाड़ आवाज करते हुये खुले। बाहर देखता हूँ तो वहाँ भयङ्कर दृश्य था। एक क्षण मैंने आँखें मूँद ली।

वहाँ शेर दो-एक न थे, पाँच-छः बड़े-छोटे शेर, सैनिकों और घोड़ों से भिड़ रहे थे। सैनिक क़रीब क़रीब बीस थे। वे

पेड़ों के झुरमुट में फैस-से गये थे। वे गरजते हुये सिंहों के पञ्जों की पकड़ से भाग भी न पाते थे, और न वे अपने बरछों से उन्हें मार ही पाते थे। उनके प्राण पखेरू उड़ रहे थे। वे लहू-लुहान हो रहे थे, भयभीत थे। थोड़ी दूर पर घोड़े पर सवार हो, उनका सरदार हवा में तलवार घुमा रहा था।

"घबराओ मत! मारो, काटो।" वह चिल्ला रहा था। पर वह स्वयं शेरों के पास नहीं जा रहा था। और तो और, वह यहाँ से भाग जाने की फिक्र में भी लगता था। वह अपना घोड़ा पीछे हटा रहा था। वह मौके की तलाश में भी था। मेरा और मेरे अनुचरों को गुप्त मार्ग से बाहर आना, न तो सैनिकों ने देखा था, न उनके सरदार ने ही। वे अपनी जान बचाने की ही फ्रिक में थे। मैं अपने अनुचरों को लेकर पेड़ों के झुरमुट में से लुके छुपे नरवाहन के सैनिकों के पीछे जा पहुँचा। उनको एक तरफ से तो शेर सता ही रहे थे, मैं उनको दूसरी तरफ से यकायक ख़तम कर देना

चाहता था। इसी में हमारी भलाई थी।

मेरे अनुचरों की भी यही राय थी। परन्तु एक दो सैनिकों को यह भी डर था कि शेर, जो अब नरवाहन के सैनिकों से भिड़े हुये थे, उन पर आ कूदेंगे। जब मरना ही है, तो शत्रुओं के हाथ मारे जाने में या शेरों द्वारा मारे जाने में अधिक फर्क न था; मैने उनको बताया। पेड़ो के पीछे से "समरसेन की जय" चिल्लाता में नरवाहन के सैनिकों पर कूदा। मेरे अनुचर भी यह ही चिल्लाते हुए शेरो की तरह उन पर लपके। वे बहुत घबरा गये।

पहले पहल, मेरी तलवार की चोट से उनके सरदार का सिर उछलता कूदता पेड़ों की थाल में जा गिरा। अनुचर भी, जिसको जहाँ नरवाहन का सैनिक मिला, उसको वहाँ ख़तम कर रहे थे। उस भिडन्त में, किसी को भी शेरों की न पड़ी थी। दो-तीन शेर तो नरवाहन के सैनिकों के बरछे की चोट खा छटपटा रहे थे और बाकी डर के मारे इधर उधर भाग रहे थे। मैदान साफ हो रहा था।

चार-पाँच मिनट में, नरवाहन के कई सैनिक हमारी तलबारों के शिकार हुए। इससे पहले कि वे जान पाते कि उन पर कौन हमला कर रहे थे कि वे ठण्ड़े पड़ गये। परन्तु उनमें से एक गला फाड़ फाड़कर चिल्ला रहा था।

"यह शिवदत्त है। द्रोही को मारो। वह एक और राज्य कायम कर देगा। हम जरूर जीतेंगे, नहीं तो स्वर्ग है ही।" कहता, वह बब्बर शेर की तरह हम पर तलवार लेकर कूदा।

उसका साहस देखकर, साथ के सैनिकों को भी हिम्मत होती-सी लगी। वे सब के सब एक साथ हमारे अनुचरों पर कूदे। मेरे दो-चार अनुचर, जो यह सोचे बैठे थे कि उनकी विजय हो गई है, उनके धावा का मुकाबला न कर सके, वे मारे गये। आफ़त को आता देख, मैने उस सरदार के घोड़े को भौका। घोड़ा दोनों पैरों के वह खड़ा हो गया और सवार नीचे गिर गया। घायल घोड़ा उसको रौंदता भाग निकला।

इस घटना के बाद नरवाहन के सैनिकों को मारने में बहुत देर न लगी। परन्तु पेड़ों के पीछे पीछे, दो-चार सैनिक भाग गये थे, यह मुझे बाद में ही मालूम हुआ।

(अभी और है)

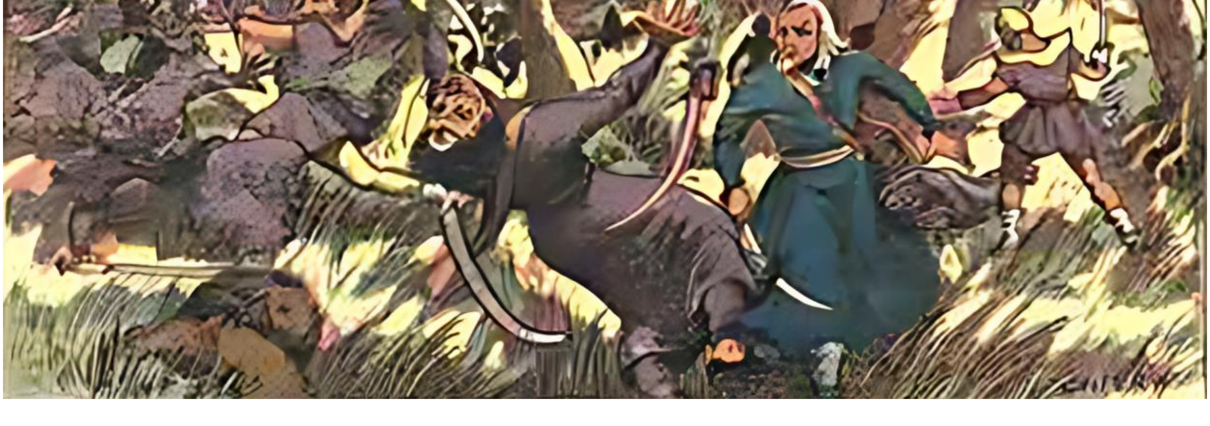

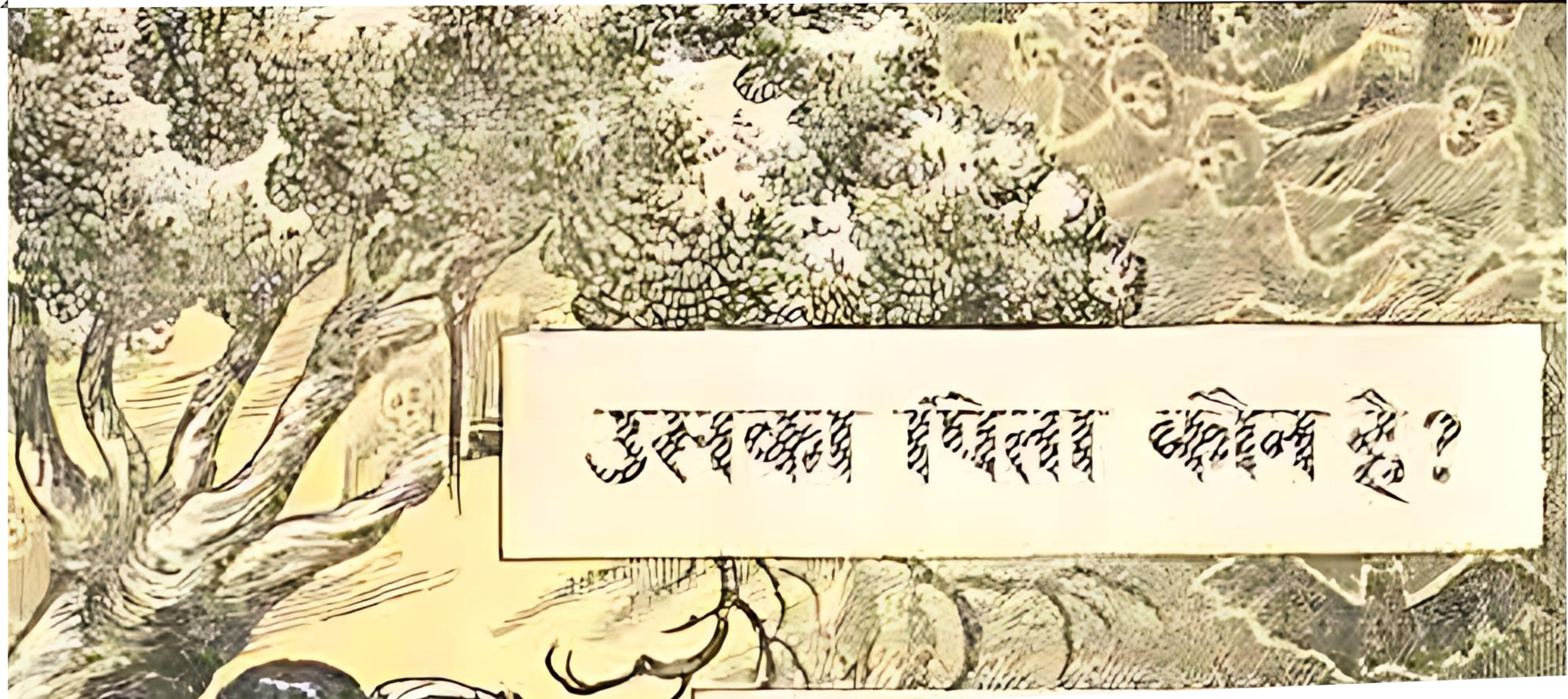

उसका पिता कौन है?

विक्रमार्क ने हार न मानी। वह फिर पेड़ पर से शव उतारकर, उसको कन्धे पर डाल, चुपचाप श्मशान की ओर चला। तब शब में स्थित वेताल ने यों कहा-"राजा! मेरे कारण तुम्हें बहुत मेहनत करनी पड़ रही है। इसलिए तुम्हें एक आश्चर्य भरी कहानी सुनाता हूँ सुनो।" उसने यह निम्न कहानी सुनायी-

ताम्रलिप्ति नामक नगर में एक वैश्य रहा करता था। उसकी एक लड़की थी, जिसका नाम धनवती था। उसके बड़े होने के बाद, जब उसके पिता उसके विवाह के बारे में दौड़-धूप कर रहा था कि वह दुर्भाग्यवश मर गया। जब वह मरा, धन-सम्पत्ति तो अलग, वह बहुत-सा कर्ज़ छोड़ता गया। यह सोच

कि कर्जवाले उनके सारे गहने ले जायेंगे, और धनवती के पहनने के लिए भी गहने न रहेंगे, वैश्य की पत्नी, अपनी लड़की के साथ, आधी रात के धने अन्धेरे में, किसी और देश के लिए निकल पड़ी।

जब वे शहर पारकर, बध्य-स्थल में से जा रहे थे, तो वैश्य की पत्नी का हाथ, एक चोर के शरीर पर लगा। उसको उसी दिन फ़ाँसी दी गयी थी। दर्द के मारे कराहते हुए उसने कहा- "हाय! मैं पहले ही मर रहा था और अब यह कौन सता रहा है?"

"अन्धेरा है, दिखायी नहीं दिया बेटा।" वैश्य की पत्नी ने कहा।

"आप कौन हैं? इस समय कहाँ जा रही हैं?" चोर ने पूछा।

"मै वैश्य स्त्री हूँ। यह मेरी लड़की है। मेरे पति गुज़र गये हैं; इस शहर में अब हमारा कोई नहीं है। कहीं और जाकर मैं अपनी लड़की का विवाह कर देना चाहती हूँ।" वैश्य की पत्नी ने कहा।

चोर ने थोड़ी देर सोचकर कहा-"माँ! मैं तो मर ही रहा हूँ। परन्तु न तो मेरी शादी हुई है, न बाल-बच्चे ही हैं।

सन्तान न होने के कारण मुझे पुण्य-लोक भी न मिलेगा। इसलिये आप अपनी लड़की को मुझे दे दें। उसके बाद, जो इसके बच्चे होंगे, वे मेरे भी होंगे। मुझे पुण्य-लोक मिल सकेगा। अगर आपने मेरा उपकार किया, तो मैं आपको बता दूँगा कि मैंने अपना सारा चोरी का माल कहाँ छुपा रखा है। उस माल से आप और आपकी लड़की, कहीं भी जाकर आराम से रह सकती हैं।"

धन के लालच में, वैश्य की पत्नी ने अपनी लड़की धनवती को मरते चोर के साथ विवाह करने का निश्चय किया।

"जो वहाँ बढ़ का पेड़ दिखाई देता है न, उसी के नीचे मैंने सोना गाड़ रखा है। मेरे मरने से पहले जाकर वह सोना निकाल लो और मेरे मर जाने के बाद मेरा दहन-संस्कार कर, मेरी अस्थियों को पानी में मिलाना। पास में ही वक्रोलक नाम का नगर है। उस नगर का राजा बहुत अच्छा है। उसके राज्य में प्रजा बड़े सुख से रह रही है। आप लोग वहीं जाना।" चोर ने सलाह दी।

उसकी सलाह के अनुसार वैश्य की पत्नी ने चोर के छुपाये हुए सोने को लेकर अपनी लड़की के साथ वक्रोलक चली गई। वहाँ से उसने आदमी भेजकर चोर के शव को मँगवाया, उसका दहन संस्कार करवाया, और उसकी अस्थियाँ भी पानी में मिलबा दीं। इस तरह उसने चोर को दिया हुआ अपना वचन पूरा किया।

वक्रोलक में एक ब्राह्मण नवयुवक रहा करता था। उसका नाम विष्णु स्वामी था। वह जुआड़ी और निकम्मा था, परन्तु देखने में वह बहुत खूबसूरत था। विष्णु स्वामी के कानों में यह बात पड़ी कि वैश्य जाति की दो स्त्रियाँ, बहुत-सा धन लेकर उस नगर में रहने आयी हैं। उसने उनका परिचय प्राप्त किया, और धनवती की माँ के सामने, उसने धनवती से विवाह करने की इच्छा प्रकट की। विष्णु स्वामी की शक्ल-सूरत देखकर धनवती का विवाह उसके साथ करने के लिये वह मान भी गई।

विवाह होने की देर थी कि विष्णु स्वामी धनवती को पैसे के लिये तङ्ग करने लगा। धनवती पैसा दे भी देती, पर उसकी माँ ने विष्णु स्वामी की दाल न गलने दी। इस तरह कुछ दिन बीत गये और धनवती का एक लड़का भी पैदा हुआ।

"अब तो तुम एक लड़के के बाप भी बन गये हो। पर अभी तक तुम अपनी जिम्मेवारियाँ नहीं जानते हो। बाहर जाकर पैसा कमाकर लाओ।" विष्णु स्वामी की सास दिन-रात उसके नाक में दम करने लगी। विष्णु स्वामी अपनी पत्नी और लड़के को छोड़कर कहीं चला गया।

थोड़े दिनों बाद वैश्य की पत्नी की मृत्यु हो गई। धनवती को जीवन से वैराग्य हो गया। अब तक वह माँ की साया में जीती आई थी। लड़के को पालती पोसती वह जीवन न बिता सकी। उसने लड़के को, गली के बीचों-बीच, पलङ्ग डालकर उस पर लिटा दिया और उसकी बगल में अपना सारा धन रखकर वह कहीं चली गई। उसने सोचा कि वह लड़का अगर किसी ग़रीब को मिल गया तो उस धन से उसका वह अच्छी तरह पालन-पोषण करेगा। उसे बड़ा करेगा और पढ़ा-लिखा भी सकेगा।

परन्तु वह बच्चा, उस देश के राजा को ही मिला। जब वह सवेरे सवेरे घोड़े पर सवार हो, शहर का दौरा कर रहा था, तो उसको गली के बीचों-बीच एक पलङ्ग पर एक बच्चा

और बच्चे की बगल में बहुत-सा धन दिखाई दिया। राजा का कोई बच्चा न था। बहुत पूजा-पाठ किया, व्रत किये, पर उसको सन्तान न हुई थी। उसने सोचा कि भगवान ने शायद उसी रूप में उसको सन्तान दे दी। बच्चा बहुत सुन्दर था। राजा, बच्चे और उसके धन को सिपाहियों द्वारा उठाकर अपने राज महल में ले गया।

बच्चे का नाम चन्द्रप्रभु रखा गया। वह बड़े लाड़-प्यार से पाला गया। उसको सब विद्याएँ सिखाई गयीं। उसको किसी चीज़ की कमी न थी। यथा समय उसको उस देश का युवराज भी बनाया गया।

फिर काल-क्रम से बूढ़े राजा की मृत्यु हो गई। चन्द्रप्रभु ने शास्त्रोक्त विधि से पिता का दहन -संस्कार करवाया, और प्रयाग में त्रिवेणी में उनका तर्पण भी किया। वह फिर पिता का श्राद्ध करने गया भी गया। जब वह श्राद्ध पिण्ड़ गया कूप में डाल ही रहा था तो पानी में तीन हाथ बाहर निकले। उनमें से एक हाथ, चोर का था। क्योंकि उस पर जञ्जीरों के निशान थे, दूसरा ब्राह्मण का था, और तीसरा राजा का। उसकी उँगुली में अँगूठी थी।

यह कहानी सुनाकर बेताल ने पूछा- "राजा, चन्द्रप्रभु को चोर के हाथ में पिण्ड़ रखना चाहिये या अपने पिता त्राह्मण के हाथ में, या राजा के हाथ में, जिसने उसको पाल-पोस कर राज दिया था? अगर तुमने जान बूझकर जवाब न बताया तो तुम्हारा सिर फोड़ दूँगा।"

"वह पिण्ड़ चोर को मिलना चाहिये, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है। क्योंकि चन्द्रप्रभु चोर का ही लड़का है और उन दोनों का नहीं। विष्णु स्वामी ने धन के कारण धनवती के साथ विवाह किया था और राजा ने चन्द्रप्रभु का चन्द्रप्रभु के रुपये-पैसे से ही पालन पोषण किया था। धनवती चोर को दे दी गई थी। इस उद्देश्य से कि उसकी सन्तान उसको पिण्ड चढ़ायेगी, चोर ने उसको अपनाया था। चोर के धन के लिये ही विष्णुस्वामी ने धनवती से विवाह किया था। उस चोर के घन से ही राजा ने उसको पाला-पोसा था। इसलिये चोर को ही चन्द्रप्रभु का श्राद्ध-पिण्ड मिलाना चाहिये।" विक्रमार्क ने जवाब दिया।

इस प्रकार राजा के मौन का भङ्ग होते ही वेताल शव के साथ अदृश्य होकर फिर पेड़ पर जा बैठा।

पाटलीपुत्र में दीक्षित नाम का एक ग़रीब पण्डित रहा करता था। उसके, बहुत दिनों बाद एक लड़का पैदा हुआ। उसका नाम उसने यज्ञदत्त रखा। बड़े प्रेम से माँ-बाप यज्ञदत्त का पालन-पोषण करने लगे। दीक्षित रोज राज महल में आया-जाया करता। इसलिये वह अपने लड़के की शिक्षा के बारे में उचित ध्यान न दे सका। और माँ के लाड़ ने यज्ञदत्त को बिगाड़ दिया।

कुछ समय बाद यज्ञदत्त का उपनयन-संस्कार कर, उसको गुरु के पास शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजा गया। परन्तु यज्ञदत्त को शिक्षा की अपेक्षा, जुए का अधिक चाव था। वह जुए में पैसा हार जाता, कर्ज लेता, और कर्ज चुकाने के लिए समय समय पर उसकी माँ कोई गहना निकालकर उसको दे दिया करती।

जब कभी दीक्षित लड़के के बारे में पूछा करता तो उसकी पत्नी कहा करती-"हाँ, वह तो बहुत अच्छा पढ़-लिख रहा है।" क्योंकि उसकी माँ उसका हमेशा साथ देती थी और यज्ञदत्त दिन प्रति दिन और भी बिगड़ता गया।

एक बार जब दीक्षित राज दरबार से लौट रहा था, तो उसने रास्ते में, एक आदमी की अँगुली में अपनी हीरे की अँगूठी देखी। उसने तुरन्त उस आदमी को रोका और अँगूठी पहचानकर पूछा-"यह अँगूठी तेरे पास कहाँ से आई?"

"आपका लड़का मुझ से जुए में हार गया था। कर्ज के बदले में उसने यह अँगूठी दी है।" "तो क्या हमारा लड़का जुआ खेलता है?" दीक्षित ने बड़े आश्चर्य से उस आदमी से पूछा।

श्रीमती डी. मञ्जुलता

"क्या आप यह नहीं जानते? सिवाय इसके वह चौबीसों घण्टे कुछ करता ही नहीं।" उस आदमी ने जवाब दिया।

दीक्षित को बहुत गुस्सा आया। वह शर्मिन्दा भी हुआ। उसने घर जाकर सन्दूक खोलकर देखा, तो हीरे की अंगूठी के अलावा कई और सोने की चीजें गायब थीं।

"इस तरह के लड़के से अच्छा नरक ही है। अरे! जरा तिल लाओ, इसका अभी ही तर्पण किये देता हूँ।" दीक्षित ने पत्नी से कहा।

यह सुन उसकी पत्नी खौल उठी, और वह यज्ञदत्त का साथ देने लगी। उसने यह न जाना कि दीक्षित ने वह बात किस हालत में कही थी। दीक्षित जान गया कि उसकी पत्नी की छूट के कारण ही यज्ञदत्त इतना बिगड़ गया था। वह अपनी पत्नी और पुत्र को डॉटने-डपटने लगा। तभी यज्ञदत्त घर की ओर आ रहा था। पिता को चिल्लाता देख वह जान गया कि उसका भेद खुल गया है। वह घर जाने का साहस न कर सका। वह झट वापिस लौटा और शहर छोड़कर कहीं जाने लगा। जब वह जङ्गल के रास्ते से जा रहा था, तो कुछ चोरों ने उसको देखा। उसकी शक्ल सूरत, वेष-भूषा देख कर, उन्होंने सोचा कि वह कोई रईस है। उन्होंने उसको खूब मारा-पीटा। वह बेहोश होकर गिर गया। चोरों के उसके पास से एक कानी-कौड़ी भी न मिली। अगर उसको वहीं छोड़ देते तो सबेरे कोई आकर उसकी खोज करता और उनका गुप्त स्थान मालूम कर लेता। इसलिये वे उसे एक गाँव में ढोकर ले गये, और छोड़ आये।

गाँव का एक किसान, जब सवेरे सवेरे घर से बाहर आया तो उसको गली में

यज्ञदत्त पड़ा हुआ दिखाई दिया। किसान ने उसको अन्दर ले जाकर खाना खिलाया और उसकी चिकित्सा भी करवाई। यज्ञदत्त थोड़े दिनों में ही स्वस्थ हो गया।

उस किसान की लड़की अभी कुँआरी थी। यज्ञदत्त ने उससे परिचय कर मैत्री कर ली, और एक दिन रात को किसान को बिना कहे उसको साथ लेकर चल पड़ा। दोनों सफर करते करते, एक हरिजनवाड़े में पहुँचे। यज्ञदत्त ने सोचा कि उनका हरिजनवाड़े में ही छुपे रहना अच्छा है। नहीं तो कोई देख लेता।

पर यज्ञदत्त हरिजनवाड़े में क्या करता? इसलिये वह वहाँ थोड़े दिन ठहर कर पत्नी के साथ एक शहर में पहुँचा। उसने चोरों से दोस्ती कर ली, और खुद चोरी करता हुआ जीने लगा। एक दिन यज्ञदत्त के पकड़े जाने की नौबत आई। इस विपत्ति से बचने के लिए, उसको पत्नी को साथ लेकर फिर शहर छोड़कर जाना पड़ा।

इस तरह यज्ञदत कहीं भी जमकर रह नहीं सका। वह घूमता घूमता काशी नगर पहुँचा। वहाँ भी चोरी करते करते उसने जैसे तैसे कुछ दिन बिताये।

इस बीच में शिवरात्रि आई। शिवरात्रि के मौके पर, काशी में यात्रियों की भीड़ लग जाती है। सब के पास पैसे और गहने होते हैं। यह सोचकर कि उसका दारिद्य ख़तम हो जायेगा, यज्ञदत्त ने सबेरे जाकर गङ्गा में स्नान किया। हजारों भक्त, अपने कपड़े किनारे रख, स्नान कर रहे थे। क्योंकि हर जगह सिपाही तैनात थे, इसलिए यज्ञदत्त कुछ न कर सका।

गङ्गा से निकलकर सिपाहियों से बचने के लिए, वह विश्वेश्वरालय में पहुँचा। कई स्त्री-पुरुष मन्दिर की प्रदक्षिणा कर रहे थे। उनकी तरह यज्ञदत्त भी मन्दिर की प्रदक्षिणा करने लगा। परन्तु एक चीज़ भी चुराने का मौका उसको न मिला।

सूर्यास्त हो गया। यज्ञदत उस दिन पानी भी न पिया था। भूख के मारे मरा जाता था। वह मन्दिर के अन्दर गया। वहाँ शिव पूजा हो रही थी। उसने एक शिव-भक्त को शिव-अर्चना के लिए, एक हँडिया में चतुर्विध अन्न रख कर, एक कोने में मन्त्र जपते देखा। वह भी एक भक्त की तरह उसके पास बैठकर, पूजा करने का अभिनय करने लगा।

रात धीमे धीमे बीत गई। अरुणोदय होने को था। शिव भक्त नींद न रोक सका, वह आँखें मूँदकर ऊँघने लगा। यह मौका देख, यज्ञदत्त ने दीये की बती जरा बढ़ाई और उसकी रोशनी में, वह हँड़िया लेकर दौड़ा, पर गलती से उसका पैर शिव भक्त को लगा।

शिवभक्त आँखें खोलकर तुरन्त चिल्लाया-"चोर चोर।" फ़ौरन कई लोग चोर का पीछा करने लगे। यज्ञदत्त भी तेजी से, सब से बचता हुआ दौड़ने लगा। रास्ते में एक जल्लाद खड़ा था। उसने एक चोर को भागता देखकर, अपने धनुष पर बाण चढ़ाया और यज्ञदत्त को निशाना बनाकर छोड़ दिया। बाण उसके कलेजे पर लगा। वह वहीं ठण्ड़ा पड़ गया। यज्ञदत्त को लेने के लिए, एक तरफ यम के किङ्कर और दूसरी तरफ विष्णु के अनुचर भी आये।

यम के किङ्करों ने विष्णु के अनुचरो को वहाँ देखकर आश्चर्य से पूछा- "तुम इसके लिए क्यों आये हो? इसने जन्म भर में एक भी अच्छा काम न किया। यह जुएबाज़, धोखेबाज, चोर और डाकू है।"

"वह सब ठीक है। पर शिवरात्रि के दिन यह सवेरे सवेरे उठा, और गङ्गा में स्नान करके आया और सारा दिन शिवालय की प्रदक्षिणा करता रहा। दिन भर इसने उपवास भी किया। रात भर जाग कर, उसने शिव-पूजा की।"

यम के किङ्करों को, यम की आज्ञा का पालन करना था। वे यज्ञदत्त को पकड़ने के लिए आगे बढ़े। पर बहुत कोशिश करने पर भी, वे यज्ञदत्त को पकड़ न सके। उनके देखते देखते, विष्णु के अनुचर यज्ञदत्त को विमान में बिठाकर स्वर्ग ले गये।

राजा भोज नये श्लोक के लिए एक एक लाख रुपये देते थे; यह जानकर कई कवि नीच कार्य भी करने लगे। यह धारणा लोगों में बन गयी थी कि राजा नया श्लोक चाहते थे, भले ही श्लोक के भाव उचित हो या न हो। यह सोच शतञ्जय नाम के एक कवि ने यह श्लोक लिखा:

"अपशब्द शतं माघे

भारबौच शतत्रयं

कालिदासे नगण्यन्ते

कविरेक रशतञ्जयः"

यह होने को तो नया लोक है, पर इसका अर्थ यों है-"माघ की रचनाओं में सौ अपशब्द हैं। भारवी की रचनाओं में तीन सौ ;कालिदास की रचनाओं में अपशब्द असंख्य हैं। शतञ्जय ही एकमात्र कवि है।"

इस श्लोक में शतञ्जय ने केवल अपने को कवि ही नहीं कहा; अपितु कालिदास, भारवी, माघ जैसे महान कवियों की निन्दा भी की। यद्यपि यह निन्दा निराधार थी, तो भी शतञ्जय ने यह सोचा था कि राजा इसके लिए लाख रुपये देगा। कवि-दिग्गजों की निन्दा कर, पुरस्कार प्राप्त कर, राजा भोज का परिहास करना भी शतञ्जय का उद्देश्य था।

परन्तु शतञ्जय में इतनी हिम्मत न थी कि स्वयं जाकर राजा भोज के समक्ष यह श्लोक सुनाये। इसलिए उसने अपने एक शिष्य को बुलाकर कहा- "जाओ, इस श्लोक को ले जाकर राजा भोज के दरबार में सुनाओ। यह बिलकुल नया श्लोक है, इसके लिए राजा भोज अवश्य एक लाख रुपये देगा। ले आओ।"

श्री महेशचन्द्र वर्मा

जब शतञ्जय का शिष्य लोक लेकर राजमहल की ओर जा रहा था, तो उसको रास्ते में कालिदास दिखायी दिया। परन्तु शिष्य को न मालूम था कि वे कालिदास थे।

"क्या आप दरबार में जा रहे हैं?" उस शिष्य ने कालिदास से पूछा।

"हाँ! क्यों, क्या बात है?" कालिदास ने पूछा।

"क्या, मुझे भी आप अपने साथ दरबार में ले चलेंगे?" शिष्य ने पूछा।

"तुम्हें दरबार में क्या काम है?" कालिदास ने उससे पूछा।

"मेरे गुरुजी ने एक श्लोक लिखकर दिया है। श्लोक को राजा के समक्ष पढ़कर पुरस्कार ले आने के लिए उन्होंने कहा है।" शिष्य ने कहा।

"कवि स्वयं क्यों नहीं आ रहा है; अपने शिष्य को ही क्यों भेज रहा है?" कालिदास को सन्देह हुआ। उसने कहा-"देखें, श्लोक कहाँ है ?"

शिष्य ने शतञ्जय का लिखा श्लोक कालिदास के हाथ में रख दिया। उसको पढ़ते ही, कवि की नीच बुद्धि कालिदास ताड़ गया। उन्होंने इधर-उधर देखा और फिर श्लोक

वापिस करते हुए कहा-"एक गलती रह गयी है नहीं तो जरूर ईनाम मिलता।"

"अगर आप गलती जानते हैं तो ठीक कर दीजिये। अगर बिना ईनाम पाये, ख़ाली हाथ वापिस गया तो गुरुजी गुस्सा करेंगे।" शिष्य, कालिदास के सामने गिड़गिड़ाने लगा।

कालिदास ने श्लोक के पहले अक्षर "अ" को "आ" बना दिया। इस छोटे-से परिवर्तन से सारे लोक का अर्थ ही बदल गया।

शतञ्जय का शिष्य कालिदास के साथ दरबार में गया। उसने नये श्लोक सुनाने की राजा की अनुमति ली। कालिदास द्वारा बदले हुए श्लोक को उसने पढ़ कर यों सुनाया-

आप शब्द शतं माघे

भारवौच शतत्रयं

कालिदासे नगण्यते

कविरेक रशतञ्जयः "

अब लोक का अर्थ इस प्रकार है :"शतञ्जय नाम के एक कवि ने माघ से सौ शब्द लिये, भारवी से तीन सौ और कालिदास से असंख्य।"

यह श्लोक सुनते ही, राजा भोज और दरबारी अट्टहास करने लगे। शतञ्जय का शिष्य बड़ा शर्मिन्दा हुआ। उसने गुरु के पास जाकर जो कुछ गुज़रा था, कह सुनाया। यह देखकर कि उसकी मान-मर्यादा मिट्टी में मिल गयी है, शतञ्जय कवि धारा नगर को छोड़ कर कहीं और चला गया।

बाद में कालिदास ने राजा भोज और दरबारियों को शतञ्जय कवि के बारे में सारी बातें सविस्तार बतायीं। सभी ने कालिदास की बड़ी प्रशंसा की।

[२]

दिलैला ने सूफ़ी सन्यासिनी का वेश उतार दिया और वह किसी रईस की नौकरानी का वेश पहिनकर अपनी चालाकी से फिर बग़दाद की जनता को सताने लगी। जब वह गली में जा रही थी तो उसको एक घर में बाजे-गाजे, गाना-बजाना, नाचना, शोर-शरावा सुनाई दिया। घर के बराण्ड़े में एक गुलाम स्त्री एक छोटे लड़के को गोदी में लेकर बैठी हुई थी। उस बच्चे के शरीर पर बहुत सारे क़ीमती गहने और ज़रीदार कपड़े थे।

उस घर का मालिक, बगदाद के बड़े व्यापारियों में गिना जाता था। वह बड़ा रईस था। उस दिन उसकी लड़की की सगाई हो रही थी। कई सारी स्त्रियाँ आई हुयी थीं। व्यापारी की पत्नी अतिथियों की आवभगत में व्यस्त थी और उसका छोटा लड़का उसको पकड़कर रोने लगा। इसलिये उसने बच्चे को गुलाम स्त्री को दे दिया था। ये सब बातें दिलैला ने गली में ही मालूम कर ली थीं। उसने उस लड़के के शरीर से गहने हथियाने की सोची।

दिलैला, घकमपेल करती हुई, बराण्डे में पहुँची। उसने यकायक जोर से कहा-"हो भला मेरा; मैने देरी कर ही दी।" फिर उसने एक खोटा सिक्का गुलाम स्त्री के हाथ में रखते हुए कहा- "आपकी पुरानी दाई, उमाल खयर, सलाम करने आई है, यह ज़रा मालकिन से तो कह आ।" गुलाम ने सिक्का लेते हुये कहा- "अगर लड़के ने माँ को देख लिया तो पल्ला नहीं छोड़ेंगे। मैं कैसे जाकर कहूँ?"

"जा! मैं बच्चे को पकड़े रहूँगी।" दिलैला ने कहा। गुलाम ने उसकी बात पर यकीन कर लिया। बच्चा दिलैला को सौंपकर वह अन्दर चली गई।

तुरन्त दिलैला, लड़के को एक सुनसान गली में ले गई, और उसके शरीर पर से उसने सब जेवर-जवाहरात उतार लिये। कपड़े भी ले लिये। फिर उसको लेकर एक बड़े जौहरी के पास गई। जौहरी ने रईस के लड़के को पहचान कर दिलैला से पूछा-"तुम्हारे मालिक को क्या चाहिये?"

"इस लड़के की बहन की सगाई हो रही हैं। एक जोड़ी सोने की चूड़ियाँ, दो जोड़ी सोने की पाजेब, हीरोंवाली सोलह बालियाँ, हीरों से जड़ा कमरबन्द चाहिये। हजार दीनार से कम का सामान मत दीजिये। माल ले जाकर मालकिन को दिखाऊँगी। अगर उन्हें जञ्च गया तो अभी पैसा ले आऊँगी। यदि आप चाहें तो बच्चे को यहीं छोड़े जाती हूँ।" दिलैला ने कहा। "जैसी तेरी मर्जी। लड़के को यहाँ छोड़कर जाने की जरूरत नहीं है।" जौहरी ने कहा। चोरी का माल लेकर दिलैला घर चली गई।

उधर रईस के घर में, सगाई की खुशी की जगह मातम मनाया जाने लगा। सारे घर में हाहाकार मचा हुआ था। रईस की पत्नी लड़के के लिए छाती पीट पीटकर रो रही थी। लड़के का ठिकाना किसी को न मालूम था। बहुत खोजने के बाद, आखिर में, लड़का जौहरी की दुकान में मिला।

"अरे, बेईमान! चोर! मेरे लड़के को यहाँ क्यों लाया है? उसके गहने वगैरह कहाँ हैं?" रईस ने बड़े गुस्से में पूछा।

आपके घर मैंने हज़ार दीनारों के गहने भेजे हैं। उनके बारे में आपका क्या कहना है?" जौहरी घबराहट में हकलाने लगा।

दोनों को, एक दूसरे को समझने के लिए काफी समय लगा। इस बीच में, वे तीन लोग भी वहाँ आ पहुँचे, जिनको दिलैला ने चकमा दिया था। यह मालूम हो गया कि सबको एक ही व्यक्ति ने धोखा दिया था। उन्होंने एक दूसरे की कथा आपस में सुनाई।

"जब तक में इस बुढ़िया को ढूँढ़ नहीं लेता हूँ, तब तक मैं न सोऊँगा।" रईस ने कसम खाई। रईस ने बाकी लोगों

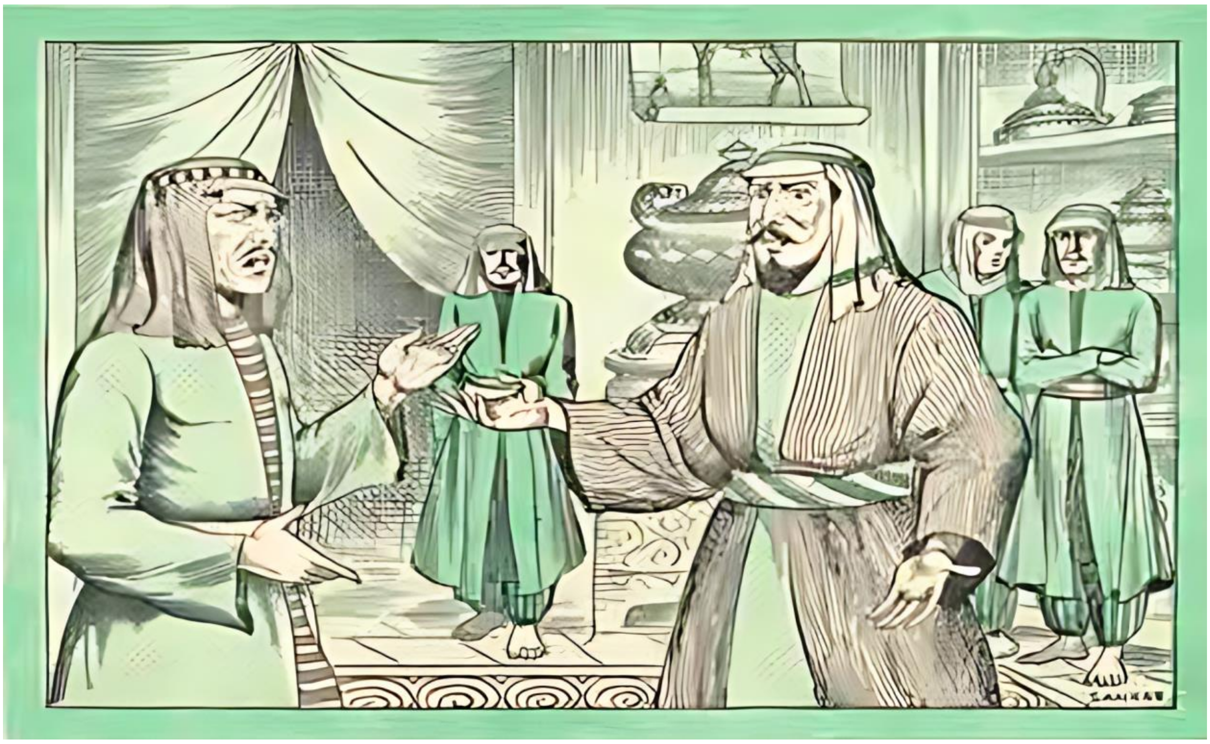

से कहा-"मैं भी आपके साथ, बुढ़िया को ढूँढ़ने निकलूँगा। मगर सबके एक साथ ढूँढ़ने से काम नहीं चलेगा। सब कोई अपने अपने तरीके से ढूँढे। दुपहर को सब के सब नाई हज़ मसूद की दुकान पर मिलेंगे।"

दुपहर को जब गधेवाला लड़का नाई मसूद की दुकान के पास से जा रहा था तो उसे दिलैला दिखाई दी। यद्यपि उसने वेश बदल रखा था, तो भी उसने उसको पहचानकर पूछा-"मिल गया, चोर कहीं का मैं तुझे ही खोज रहा था।"

"क्यों बेटा! यह क्या कह रहे हो?" दिलैला ने मासूम चेहरा बनाकर कहा।

"गधी कहीं की! पहले मेरा गधा वापिस दे, फिर बात करना।" लड़के ने कहा।

"चिल्लाते क्यों हो? क्या मैं तेरा गधा ले गई थी? मसूद के पास रखा हुआ है। मेरे साथ आ। तेरा गधा दिलाये देती हूँ।" दिलैला ने कहा। गधेवाला उसके पीछे चल दिया। उसको दुकान के बाहर छोड़ दिलैला अन्दर जाकर, मसूद के सामने रोने लगी-"बाबू! तुझे इसका फ़ैसला करना ही होगा।"

"क्यों चाची, क्या बात है? कहो भी।" मसूद ने कहा।

"देख बेटा! वह जो बाहर खड़ा है, वह मेरा लड़का है। बीमार हो गया था, मुश्किल से बचा है। मगर दिमाग खराब हो गया है। बचपन में उसके पास कभी एक गधा था। उसी के दिन-रात सपने लेता रहता है। हर वक्त 'गधा! गधा!' चिल्लाता रहता है। तू ही उसकी अक्ल ठीक कर सकता है।" दिलैला ने कहा। दिलैला के दिये हुए दीनार को जेब में

रखते हुए मसूद ने कहा-"यह कितना बड़ा काम है? सिर घोट कर, दो चार बार निम्बू का रस पोता कि नहीं, बीमारी काफूर हो जायेगी।"

"मना-मनूकर, उसे बुला ले। उसका इलाज ठीक तरह से करना। तेरा एहसान न भूलूँगी।" दिलैला ने कहा। मसूद ने घर के बाहर जाकर लड़के को देखकर कहा-"आ, अन्दर आ।"

"मेरा गधा कहाँ है?" लड़के ने पूछा।

"तेरा गधा मेरे पास है। गधा भला कहाँ जायेगा? जरा अन्दर तो आ।" नाई मसूद ने कहा।

लड़के का बराण्डे में आना था कि मसूद के नौकरों ने उसके हाथ बाँध दिये। मसूद ने उसका सिर घोट दिया। निम्बू का रस लगाने लगा। लड़का चिल्लाने लगा।

मसूद जब इलाज पूरा करके अपनी दूकान के अन्दर गया तो बुढ़िया का पता न था। और तो और, वहाँ रखे, कैंची, उस्तरे, शीशे, तेल, इत्र, कुर्सी, मेज़ वगैरह सब गायब थे।

मसूद ने लड़के का गला पकड़कर जोर से पूछा-"तेरी माँ कहाँ है? बता भी।"

"मेरी माँ के गुज़रे तो अर्सा हो गया। तूने मेरा गधा देने के लिये कहा था। झट दे दे।" सिर को पोंछते हुए लड़के ने नाई मसूद से कहा।

जब वे आपस में लड़-झगड़ रहे थे तो बाकी लोग भी वहाँ आ पहुँचे। उनको मालूम हुआ कि बुढ़िया उनकी आँखों में फिर धूल झोंक गई थी। नाई मसूद भी उनके साथ बुढ़िया को ढूँढ़ने निकल पड़ा।

जब वे बहुत-सी गलियों में घूम-फिर कर एक जगह खड़े हुये, तो गधेवाले लड़के

को फिर एक बार दिलैला दिखाई दी। दीखते ही वह उस पर टूट पड़ा। " वह है, वह चोर बुढ़िया, इस बार बचकर न जाने देना।" वह चिल्लाने लगा।

सब मिलकर उसको खालिद के घर ले गये। वहाँ उन्होंने सिपाहियों से कहा-"हमें फ़ौरन खालिद के दर्शन करने हैं।"

खालिद सो रहा था। उनके उठने तक सिपाहियों ने उनको इन्तजार करने को कहा। मर्दों को वहीं एक जगह बैठा दिया, और दिलैला को जनाने के एक कमरे में ले गये। दिलैला उस कमरे में से अन्दर चली गई। कई कमरे पारकर, दुमञ्जिले में, वह खालिद की पत्नी के कमरे में गई। सलाम करके दिलैला ने कहा- "पाँचों गुलामों के लिये आपके पति ने बारह सौ दीनार देने का वादा किया है। मैं उनको ले आई हूँ। मालूम हुआ है कि वे सो रहे हैं। न जाने वे कबतक सोते रहें।"

खालिद की पत्नी ने कहा-"वह तो मैं नहीं जानती। पर, हाँ! उन्होंने एक बार गुलामों के खरीदने के बारे में जरूर कहा था। कहाँ है तुम्हारे गुलाम?"

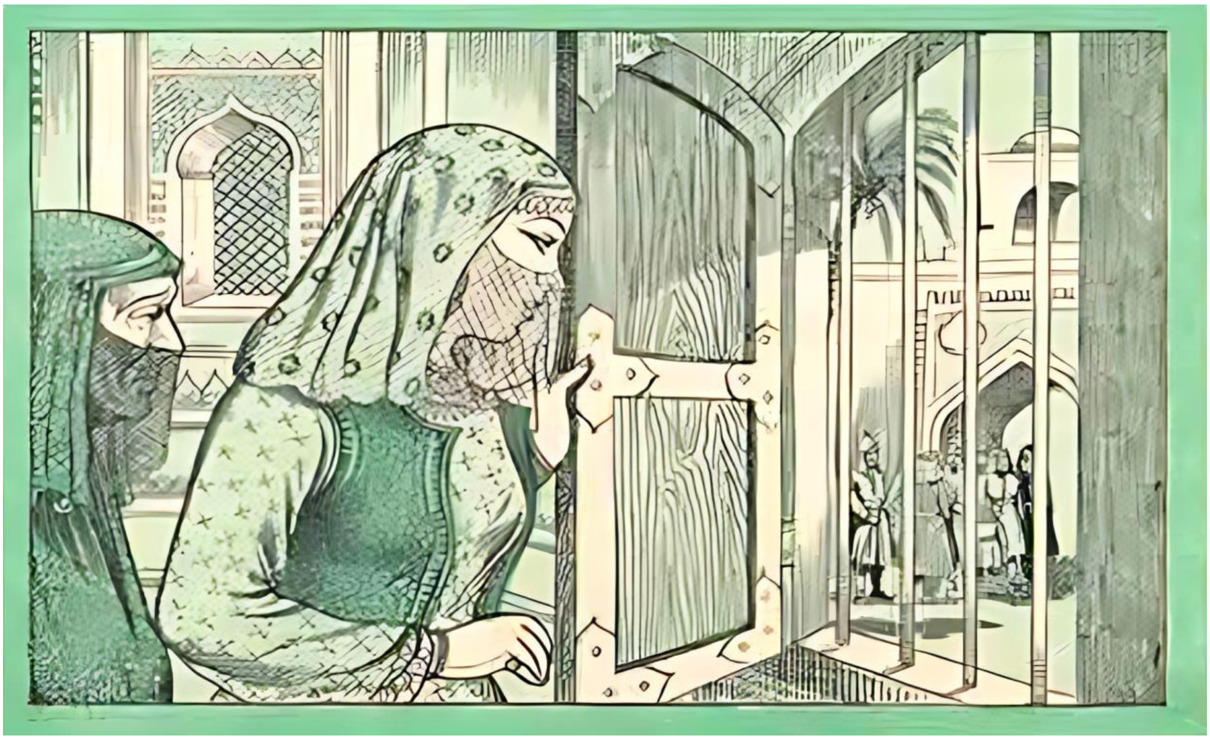

"बाहर ही हैं। खिड़की में से दिखाई दे सकते हैं। सब अच्छे खानदान के हैं। किसी भी प्रकार का कोई दोष उनमें नहीं।" दिलैला ने कहा।

बाहर बैठे हुये पाँचों आदमियों को देखकर खालिद की पत्नी को बड़ी तसल्ली हुई। उसने दिलेला से कहा- "पैसे तो मैं ही दे देती। पर मेरे पास इस समय एक हज़ार दीनार ही हैं। क्या करूँ?"

"हजार तो काफ़ी हैं न? मैंने दो सौ तो पहले ही पेशगी में ले लिये थे।" दिलैला ने कहा। हज़ार दीनार लेकर उसने सलाम करते हुये कहा- "आपने मेरा बड़ा एहसान किया है कि बिना इन्तज़ार करवाये ही तुरन्त पैसे दे दिये। मैं अपने गुलामों के चेहरे देख नहीं पाऊँगी। मैं बहुत दुखी हूँ। मुझे मेहरबानी करके पिछवाड़े में से भिजवा दीजिये।"

खालिद जब सोकर उठा तो उसकी पत्नी ने कहा-"सचमुच आपने अच्छा भाव किया है।" फिर उसने गुलामों के बारे में कहा।

सच सुनकर खालिद ने आश्चर्य से पूछा-"गुलाम! कौन से? क्या भाव? मैंने तो किसी को कोई पेशगी नहीं दी है।"

"यह क्या कह रहे हैं? मैंने तो बुढ़िया को हज़ार दीनारें भी दे दी हैं। पाँचों गुलाम नीचे खड़े हैं।" खालिद की पत्नी ने कहा। खालिद जल्दी जल्दी नीचे उतरा। वहाँ उसने इन्तज़ार करते हुये, दुकानदार, रङ्गरेज़, जौहरी, नाई मसूद, और गधेवाले लड़के को देखा।

"क्या तुम ही हो मेरे खरीदे हुए गुलाम?" उसने उनसे पूछा।

"आपका इन्साफ क्या यही है? क्या हम गुलाम हैं? चलिये खलीफा से पूछें।" उन लोगों ने कहा।

उसी समय मुस्तफा भी वहाँ आया। इस बीच में बुढ़िया ने उसकी पत्नी को कैसे धोखा दिया था, वह जान गया था। उसने खालिद से पूछा- "आपकी देखरेख में, लगता है, हर बुढ़िया, जिस घर में जब चाहे तब, जो चाहे, सो कर सकती है। मेरी पत्नी के धोखे के बारे में क्या करने का इरादा है?"

खालिद ने घबराते हुए कहा-"हुज़ूर, इस बुढ़िया को पकड़ने की, और सज़ा देने की जिम्मेवारी मेरी रही। आप सब को हरजाना देने की जिम्मेवारी भी मेरी रही।" उसने बाकी लोगों की तरफ़ देखते हुए पूछा-"आप में से उसको कौन पहचान सकते हैं?"

पाँचों ने बताया कि वे पहचान सकते हैं। "अगर आपने हमें दस सिपाही दे दिये, तो हम उसको पकड़वा भी देंगे।" उन्होंने खालिद से कहा।

सिपाहियों को लेकर वे थोड़ी दूर गये थे कि बुढ़िया उनके सामने से भाग गई। पर उन्होंने उसका पीछा करके उसको पकड़ लिया और हाथ बाँधकर वे खालिद के पास ले गये। परन्तु.... (अभी और है)

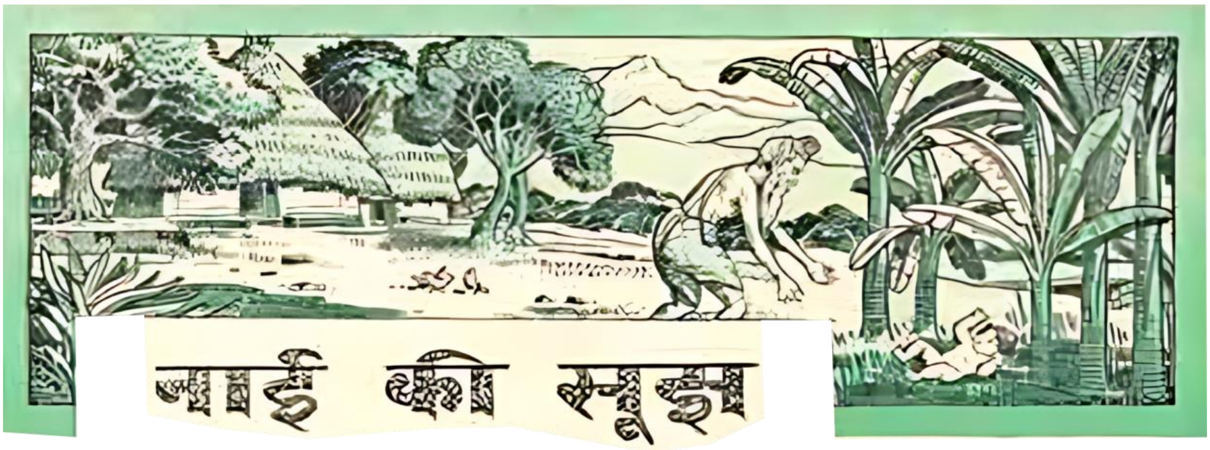

भाई की सूझ

सरयू नदी के किनारे, धनु नाम का महामुनि एक आश्रम बनाकर तपस्या किया करता था। एक दिन महामुनि को केले के पेड़ों के बीच में एक बच्ची दिखाई दी। मुनि उसको अपने आश्रम में ले गया। उसका नाम उन्होंने कदली रखा और अपनी पुत्री की तरह वे उसका दिन-रात पालन पोषण करने लगे।

कदली सवानी हुई। उसी समय मध्यदेश का राजा दृढ़वर्मा, शिकार खेलता खेलता उस इलाके में आया। महामुनि के दर्शन करने के लिये वह उनके आश्रम में भी गया। वहाँ कदली को देखकर, राजा को उसके साथ विवाह करने की इच्छा हुई। तुरन्त राजा ने महामुनि के पैरों पर पड़कर निवेदन किया-"स्वामी! मेरी एक इच्छा है। अगर आप कहें कि आप उसे पूरा कर देंगे तो बताता हूँ।"

महामुनि ने आसानी से राजा की इच्छा जान ली कि वह कदली से विवाह करना चाहता है।

"राजन्! मुझे अपनी लड़की का आपसे विवाह कर देने में कोई आपत्ति नहीं है। पर कदली का पालन पोषण अन्तःपुर में नहीं हुआ है। वह आश्रम में ही बड़ी हुई है। अगर आप यह वचन दें कि उसको आप अपने प्राण से भी अधिक देखेंगे, तो मैं विवाह करने के लिये तैयार हूँ।" धनु महामुनि ने कहा।

"मैं उसको अपने प्राणों से भी अधिक समझूँगा।" राजा ने वचन दिया। शुभ मुहूर्त में महामुनि ने शास्त्रोक्त विधि के अनुसार दोनों का विवाह कर दिया।

जब कदली राजा के साथ जाने लगी तो उसकी सहेलियों ने कहा- "कहते हैं

श्री राज नारायण

कि राजाओं के अन्तःपुर सोने के पिञ्जड़े हैं। क्या पता कि तुम वहाँ सुखी रह सकोगी कि नहीं! अगर मन न लगे तो यहीं वापिस आ जाना। पर तुम्हें लिवा लेने के लिये यहाँ कोई न होगा। इसलिये जाते समय रास्ते भर में ये सरसों के बीज बिखेरते जाना। वे जल्दी ही उग आयेंगे। और जब एक पौधा सूखेगा, तो उसकी बगल में ही नये पौधे उग आयेंगे। उनको निशान समझकर तुम आश्रम आसानी से पहुँच सकोगी।" सहेलियों ने सरसों के बीज़ों की पोटली उसको दे दी।

राजा अपनी नई पत्नी को लेकर मध्यदेश पहुँचा। रास्ते भर कदली सरसों के बीज झलती गई।

कदली जब से अन्तःपुर आई, तब से राजा ने अपनी बड़ी रानी का मुँह भी न देखा। दरबार ख़तम होते ही, वह कदली के महल में चला जाता, और वहीं नृत्य, सङ्गीत से मनोरञ्जन करता। वहीं खाता-पीता, सोता, और वहीं से दरबार में जाता।

यह सब देखकर बड़ी रानी को बहुत गुस्सा आया। उसने मन्त्री को बुलाकर कहा-"राजा, नई पत्नी के

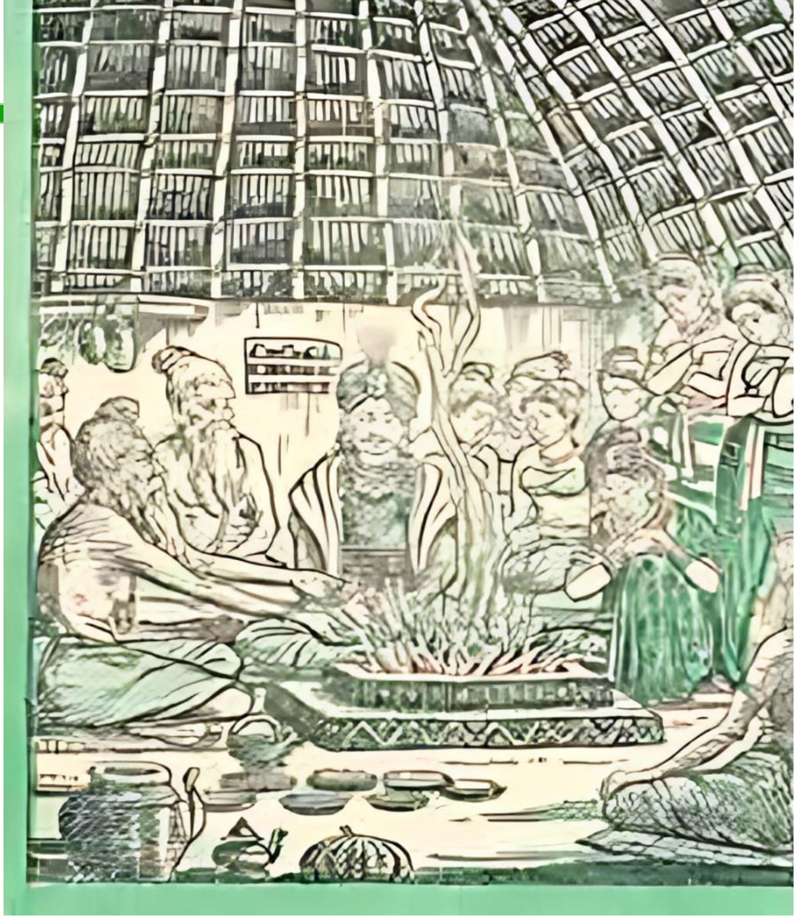

चुङ्गल में ऐसे फँसे हैं कि मुझे भूल ही गये हैं। उनको चुङ्गल से निकालने का कोई तरीका बताइये।"

यह सुनते ही मन्त्री को ऐसा लगा, जैसे किसी ने सोसा घोलकर उसके कानों में डाल दिया हो। "इस तरह के नीच काम करने के लिये कितनी ही नीच औरतें हैं। आप मुझसे क्यों यह पूछती हैं?"

रानी ने तुरन्त अपनी गलती महसूस करते हुये कहा-"राजा से सम्बन्धित बात है, इस वजह से मैंने आपसे कहा। अगर आप इसे अनुचित समझते हैं, तो भला मैं

ही क्यों करने को कहती?" उसने पछताने का ढोङ्ग किया।

बाद में, बड़ी रानी ने चुपचाप एक नीच औरत को अन्तःपुर बुलाकर, उसको खूब धन का लालच दिया और कहा कि चाहे जैसे भी हो, वह कदली को मार दे।

वह नीच औरत, विष वगैरह देने में बहुत पहुँची हुई थी। धन के लालच में, उसने छोटी रानी को मार देने का वचन दिया। परन्तु उसे डर लगा कि यदि उसने स्वयं ही सारा काम किया तो कहीं उसी की जान पर आफत न आ पड़े। इसलिये उसने शहर में जाकर एक नाई की मदद माँगी।

"अगर तूने छोटी रानी को पार लगा दिया, तो जो कुछ बड़ी रानी मुझे देंगी, उसमें से आधा में तुझे दूँगी।" उस नीच औरत ने नाई से कहा।

नाई ने सोच-विचार कर कहा- "छोटी रानी को मारना कोई आसान काम नहीं है। राजा उन पर जान देते हैं। हाँ, एक बात जरूर की जा सकती है। बड़ी रानी से यह पूछकर मालूम करो कि क्या यह

काफ़ी है कि अगर राजा का मन छोटी रानी पर से हटा दिया जाय।"

उस औरत ने यह बात बड़ी रानी से कही। "जब तक छोटी रानी जिन्दा हैं, राजा किसी हालत में उनको न छोड़ेंगे। इसीलिये मैंने उसको मार देने के लिये कहा था। अगर तुम कहती हो कि बिना मारे ही राजा उसको छोड़ देंगे, तो इससे अच्छा और क्या हो सकता है?" बड़ी रानी ने कहा।

एक दिन रात को, नाई श्मशान में गया और वहाँ से कपाल, हड्डियाँ वगैरह इकट्ठा कर लाया। उनको पोटली में रख, वह बड़ी रानी के पास पहुँचा।

"रानी जी! इन हड्डियों को रात में, छुपे छुपे छोटी रानी के चौके में रखवा दीजिये। बाद में, राजा तक यह बात पहुँचाइये कि छोटी रानी पिशाचिनी हैं। कहिये कि सारे घर की तलाशी ली जाय। जब ये हड्डियाँ उनकी नज़र में पड़ेंगी, तभी वे विश्वास कर लेंगे। वे छोटी रानी को अन्तःपुर से भेज देंगे।" नाई ने कहा।

बड़ी रानी ने सन्तुष्ट होकर नाई को बहुत-सा सोना ईनाम में दिया। नाई की चाल चल गई। राजा ने पहले तो विश्वास

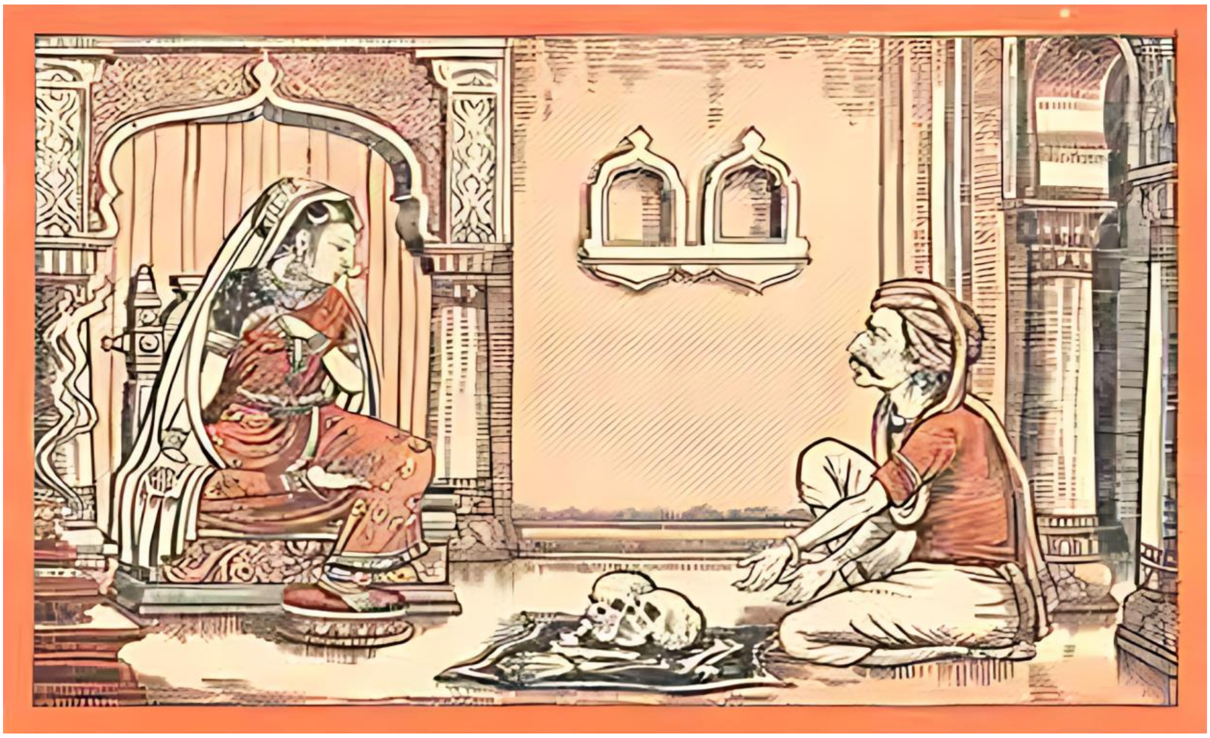

नहीं किया कि छोटी रानी पिशाचिन थी। पर जब चौके में, मनुष्य की हड्डियाँ दिखाई दी, तो उन्हें यकीन हो गया। उन्होंने कदली को घर से बाहर कर दिया। कदली, सरसों के पेड़ के सहारे पैदल धनु महामुनि के आश्रम में पहुँची। सारे शहर में यह बात फैल गई कि राजा ने अपनी छोटी रानी को घर से भेज दिया है। नाई तो इसकी इन्तजारी में था ही। वह तुरन्त राजा के दर्शन के लिये गया। जब उसने कहा कि वह एक ख़ास बात एकान्त में कहना चाहता था, तो राजा ने नाई को अपने पास आने दिया।

"कितना अन्याय हुआ है, हुजूर! आपने एक निर्दोष पत्नी को घर से हटा दिया है। इस में मैंने भी कुछ अनजाने कर दिया है।" नाई ने कहा।

"तूने क्या किया है? जल्दी कहो।" राजा ने कहा।

"दो दिन पहले मुझे बड़ी रानी ने बुलाकर कहा कि अगर कहीं मनुष्य की हड्डियाँ मिलें तो ले आओ। मैं उनके लिये हड्डियाँ ढूँढ़ ढाँढ़ कर ले आया। मुझे क्या मालूम था कि इतना अन्याय होगा।" नाई यकायक रोने लगा।

राजा ने उसको बहुत-सा ईनाम देकर भेज दिया। बाद में, बड़ी रानी को कैद में बन्द कर उनके विरुद्ध मुकदमा चलाया गया। बड़ी रानी ने मान लिया कि उसने ही छोटी रानी के विरुद्ध षड़यन्त्र किया था। राजा ने उसको बड़ी रानी के पद से हटा दिया। वह फिर धनु महामुनि के आश्रम में गया। महामुनि को साष्टाङ्ग नमस्कार कर उसने क्षमा माँगी। कदली से भी माफी ली। वह फिर कदली को अपने अन्तःपुर में ले गया, और उसको बड़ी रानी बनाकर उसके साथ सुख से रहने लगा।

रंगीन चित्र-कथा चित्र — २